दो बेमिसाल अध्यापक, दो अलग दौर

फ़राह फ़ारूक़ी व अनिल सेठी

हम दोनों, इस पर्चे के लेखक[1], काफी सालों से सरकारी मदद से चलने वाले एक स्कूल से जुड़े हैं। हम में से एक लगभग 6 साल इस स्कूल का मैनेजर रहा है; दूसरे ने वक्तन-फवक्तन बच्चों और अध्यापकों के साथ काम किया है।[2] इस पर्चे में हम अलग-अलग दौर के दो बेमिसाल असातिज़ा की बात करना चाहते हैं। एक, सफदर नक़वी, जो 1948 में स्कूल से बतौर उस्ताद जुड़े और 1990 में रिटायर होने के बाद स्कूल के मैनेजर भी रहे। दूसरे, नूरुल इस्लाम, जो स्कूल में 2006 से आज तक लगातार काम कर रहे हैं। दोनों अपने-अपने मैदान में माहिर रहे हैं। इस पर्चे में हम इन दोनों उस्तादों की शख्सियत को समझने की कोशिश करेंगे। साथ ही, यह क़ुबूल करते हुए कि इनका काम उनकी अपनी-अपनी शख्सियत का अक्स हो सकता है, यह सवाल उठाना चाहेंगे कि सफदर की मेहनत, लगन और काम क्या एक नए, बनते-उभरते, पहचान-खोजते राष्ट्रीय-

है? इन दो टीचर का चित्रण करते हुए हम इस तरह के सवालों से जूझने की कोशिश करेंगे।

यह पर्चा हमारे एक बड़े प्रोजेक्ट का हिस्सा है। हमने पुरानी दिल्ली से लगे हुए एक खास स्कूल की तारीख पर काम करना शुरू किया है। हम आशा करते हैं कि यह काम *शिक्षा विमर्श* में छपे हम में से एक (फ़राह फ़ारूक़ी) के उन्नीस लेखों के तर्कों को आगे बढ़ाएगा। फ़राह के उन्नीस लेख स्कूल के रोज़मर्रा के जीवन के बारे में हैं। इनमें स्कूल के औपचारिक-अनौपचारिक ढाँचों की, अध्यापक-बच्चों के रिश्तों, गतिविधियों की, स्कूल और उसके मोहल्ले के समाजशास्त्र की बातें की गई हैं और यह बड़ा सवाल उठाया गया है कि स्कूल बच्चों को आखिर क्या दे पाता है। लेकिन यह लेख ज़्यादातर मौजूदा वक्त के बारे में है। अब हम स्कूल के इतिहास-सम्बन्धी प्रोजेक्ट में इन लेखों की मौजूदा तस्वीर को माज़ी से उभरती हुई फिल्म के रूप में पेश करना चाहते हैं। यह लेख नए प्रोजेक्ट के शुरुआती दौर की उपज है।

राज्य के प्रोजेक्ट का हिस्सा था? नेहरू जैसे सियासी रहनुमाओं से मिल पाना और राष्ट्र के लिए मंसूबे बना पाना क्या एक अलग तरह की हिम्मत और लगन पैदा करता था? क्या आज का दौर टीचर से हिम्मत और पूरी तरह खिलने की कुव्वत छीन लेता है? क्या यह अलग-अलग दौर की बात है? क्या वक्त के साथ आई स्कूल के संगठन में सख्ती और लचीलेपन की शदीद कमी इसका कारण हो सकती

यह पर्चा कई स्रोतों पर आधारित है। हमने सफदर से 2011 से 2013 के अरसे में चार बार साक्षात्कार किया, और नूर से 2013 से 2017 के बीच में पाँच बार। दोनों टीचर के साथियों और शागिर्दों से भी साक्षात्कार किए हैं। नूर के साथ फ़रहा ने बतौर मैनेजर एक लम्बे अरसे काम किया है और उन्हें मुख्तलिफ हालात से जूझते हुए देखा है। सफदर सन् 1978 से शिक्षकों के लिए एक अखबार-नुमा रिसाला निकालते थे जिसका नाम *शिक्षक साथी* है। इस रिसाले में उन्होंने टीचर और प्रशासक के तौर पर अपनी जद्दोजहद की बात की है। हमने सन् 1978 से लेकर 2016 तक के अखबारों का मुआईना किया है। उनकी लिखी हुई कहानियों की किताबें भी पढ़ी हैं। इसके अलावा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों जैसे सुभद्रा जोशी और कैसर नकवी के उस दौर के लेख भी पढ़े हैं।

***

हमारे स्कूल की शुरुआत तकरीबन सौ साल पहले रहमानिया मदरसे के तौर पर हुई।[3] बटवारे के वक्त मदरसा चलाने वाले अब्दुर्रेह्मान पाकिस्तान जाते हुए चाबी जामिया मिल्लिया के ज़ाकिर हुसैन को दे गए। ज़ाकिर हुसैन ने मदरसे की जगह उस इमारत में तालीमी मरकज़ खोल दिया क्योंकि यह इदारा 1947 के दंगों में जला दिया गया था। सन् 1951 में जामिया मिल्लिया से जुड़े लोगों ने दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी बनाई जिसका मकसद पुरानी दिल्ली के मुसलमानों के लिए काम करना था। तालीमी मरकज़ इस सोसाइटी के साथ जुड़ गया और आहिस्ता-आहिस्ता सरकारी मदद से चलने वाला सीनियर सेकेंडरी स्कूल बन गया। तब से अब तक यहाँ पढ़ने वाले ज़्यादातर बच्चे माली और समाजी ऐतबार से कमज़ोर वर्ग से ताल्लुक रखने वाले मुसलमान परिवारों के रहे हैं। हालाँकि, बटवारे के फौरन बाद हिन्दू-सिख शरणार्थी बच्चे भी यहाँ पढ़ते थे।[4]

दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी का आगाज़ ऐसे दौर में हुआ जब मुल्क में बटवारे के ज़ख्म हरे थे और मुसलमान अपनी नई पहचान से दो-चार हो रहे थे। इन हालात में सन् 1948 में स्कूल की नींव रखने वालों में सफदर थे जो बस दसवीं पास थे; बाद में उन्होंने ग्रेजुएशन, पोस्टग्रेजुएशन, बी.एड. किया।[5] टीचर के अलावा वे स्कूल के प्रिंसिपल और मैनेजर भी रहे। लम्बे अरसे तक उन्होंने शहर के सरकारी मदद से चलने वाले टीचर संघ के सेक्रेटरी के रूप में काम किया।[6] सोशलिस्ट पार्टी के साथ मिलकर तकसीम के दौर में इलाके में अमन कायम करने के काम से भी जुड़े।[7]

पहली कक्षा से लेकर बारहवीं तक की कक्षाओं को सफदर ने अलग-अलग चरणों में पढ़ाया। शुरू की कक्षाओं में पढ़ाने की जद्दोजहद के बारे में बताया कि "एक दिन कुम्हारों के यहाँ से मिट्टी लाया, बहनों को दी, कहा

इसके गुल्ले बना दो, फिर दस-दस गुल्ले एक थैली में डाले और दस-दस थैलियाँ एक थैले में, इस तरह इकाई, दहाई, सैकड़ा पढ़ाया।"[8] उनके एक शागिर्द के हिसाब से उन्हें छठी से आठवीं तक, 'अँग्रेज़ी ट्रांसलेशन मेथड से नहीं पढ़ाई बल्कि इंग्लिश टू इंग्लिश पढ़ाई'।[9] बाद में सफदर PGT History हो गए थे। उनके एक शागिर्द का कहना है, "हम उनसे पढ़े तो पता चला कि तारीख भी रटने की चीज़ नहीं है। पढ़ाते क्या थे, मंज़र कशी करते थे, जो कहते थे वह सुबूत के साथ कहते थे और नज़रिया बनाने की कोशिश करते थे।"[10] लेकिन वे अपना नज़रिया दूसरे पर थोपते नहीं थे। जैसा की उनके एक और शागिर्द की बात से पता चलता है, "एक बार इम्तिहान में सवाल दिया, मेरा नज़रिया उनसे बिलकुल मुख्तलिफ था लेकिन जो सोचता था वही लिखा, बाद में लगा कहीं फेल न हो जाऊँ लेकिन अच्छे नम्बर से पास हुआ।"[11]

सफदर एन.सी.ई.आर.टी. की तारीख की किताबें बनाने वाली टीम का भी हिस्सा रहे।[12] इसके अलावा सफदर ने बच्चों के लिए कई कहानियाँ लिखीं जिन्हें एन.सी.ई.आर.टी. से राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला।[13] सख्त इन्सान थे, सज़ा से परहेज़ नहीं था, लेकिन पढ़ाई के लिए उनके घर के दरवाज़े खुले रहते थे। इम्तिहान के दौरान बच्चे रात बारह बजे भी दरवाज़ा खटखटा सकते थे। खाने, चाय, पानी का इन्तज़ाम-ऐहतमाम होता था। कई बच्चों को पढ़ाई की खातिर घर में महीनों जगह दी।[14]

'बच्चों की बिरादरी' नाम के क्लब की शुरुआत इस स्कूल में, और मोहल्लों में, उनके भाई कैसर नकवी ने की। सफदर भी साथ थे। रेफ्यूजी और इलाकाई बच्चे साथ खेलते थे और लाइब्रेरी चलाते थे। मकसद था कि बच्चे, जो दहशत का शिकार हैं, इससे उभरें और इनके ज़रिए बड़ों के दिलों को जोड़ा जाए।[15]

उस वक्त, हर हफ्ते मोहल्ले के नुक्कड़ पर, सफदर की सदारत में, स्कूल के बच्चों का बनाया अखबार लगता था जिसका मोहल्ले वाले बेसब्री से इन्तज़ार करते थे। इस दीवारी अखबार का पैमाना 10 x 4 फुट होता था और यह मोहल्ले के नुक्कड़ पर कई जगह लगाया जाता था। लगाने से पहले कई लोगों – जैसे शफीक उर रहमान किदवाई और शमसुर रहमान मोहिसनी साहेब – से बातचीत होती थी। दीवारी अखबार की कई खास जिल्दें भी तैयार की गईं, जैसे गाँधी नम्बर (30 जनवरी 1949), आज़ादी नम्बर (15 अगस्त 1949) और इंडोनेशिया नम्बर। इन जिल्दों को पढ़ने के लिए जामिया के सोशल वर्कर भी आए। एक दीवारी अखबार 28 फरवरी 1949 को लगाया गया। उसी दिन बजट आया था। अखबार में कुछ इस तरह के जुमले और तस्वीरें थीं कि यह समझा गया जैसे लोगों को

इंकलाब के लिए उकसाया जा रहा हो। जबकि 'revolution' जैसे लफ्ज़ का इस्तेमाल नहीं किया गया था। लोगों की भीड़ ने अखबार पढ़ा। जाँच-पड़ताल करने वालों में से एक सी.आई.डी. इंस्पेक्टर भी थे। कुछ लोगों ने डराया भी कि गिरफ्तारी हो सकती है।[16]

प्रिंसिपल और मैनेजर के तौर पर काम के बारे में पूछने पर साथी टीचर एक जवाब ज़रूर देते हैं, "बड़ी भारी-भरकम शख्सियत थी" या फिर "ज़र्फ वाले इन्सान थे, मैंने एजुकेशन अफसर के सामने उनकी बुराई की लेकिन मेरा कोई काम नहीं रुका, न ही कोई और आँच आई"।[17] उनके उसूल और सख्ती को बेहतर निज़ाम के तौर पर देखा गया। उनके प्रिन्सिपलशिप के ज़माने में स्कूल में साइंस स्ट्रीम आई। मदरसे की खस्ता हाल बिल्डिंग का एक हिस्सा उन्होंने नया तामीर करवाया।[18] स्कूल में नए टीचर की बहाली में हर प्रिंसिपल और मैनेजर का हाथ होता है, सो सफदर का भी रहा। 'बड़ी भारी-भरकम शख्सियत' होने का अक्स यहाँ हमें नज़र आता है। अपने खयाल में सही अपॉइंटमेंट किए लेकिन कई शिक्षा महकमे के रूल के खिलाफ किए, कुछ पर नज़रे-करम होने का आभास भी होता है। कई फिकरों में से एक थी कि स्कूल में हिन्दू बच्चे और टीचर हों। जागीर-दराना मिज़ाज का अक्स ज़बान से भी मिलता है। एक टीचर के लिए कहा, "उसको स्कूल में लाने वाला मैं था, लेकिन वही मेरी वाहिद बड़ी गलती थी।"[19] आप स्कूली सियासत का मरकज़ रहे, अध्यापकों का एक गुट आप के साथ और दूसरा आदिल साहब के साथ था।[20]

तब ही टीचर एसोसिएशन बनी,

सफदर मेम्बर थे, बाद में सेक्रेटरी भी रहे। काफी सालों तक सरकारी मदद से चलने वाले स्कूल में पेंशन का प्रावधान नहीं था। बोट क्लब पर पाँच दिन की रीले भूख हड़ताल और धरना किया। एसोसिएशन के और सदस्यों के साथ एजुकेशन सेक्रेटरी से मिले। दिल्ली एजुकेशन एक्ट 1973 पेश हुआ और सरकारी मदद से चलने वाले स्कूलों में पेंशन का प्रावधान हो गया।[21]

तकसीम के वक्त, मृदुला साराभाई और सुभद्रा जोशी मोहल्लों में सोशलिस्ट पार्टी की शान्ति दल नामक संस्था के माध्यम से काम कर रहीं थीं। मकसद था जो मुसलमान भाग रहे थे, और जो लोग पाकिस्तान से आए थे, उनमें हिम्मत पैदा करना। पुराने किले में जो लोग ठहराए गए थे उनकी देखभाल के काम से जुड़े। मृदुला साराभाई ने उन्हें पुलबंगश का इंचार्ज बना दिया। सफदर ने चार मोहल्लों का काम सम्भालाः बेरी वाला बाग, नया मोहल्ला, नवाबगंज और किशनगंज। सरकार ने तय किया था कि इन मोहल्लों में सिर्फ मुसलमान रहेंगे। कोई घुसपैठी दाखिल न हो, इसके लिए सफदर कार्यकर्ताओं की छः-छः घण्टे की ड्यूटी लगाते थे। एक दिन पता चला कि पुलिस खाली घरों का कब्ज़ा दे रही है, तो सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य नेहरू से मिले। नेहरू ने तय किया कि सरकार कब्ज़ा नहीं देगी बल्कि मकानों पर कब्ज़ा शान्ति दल ही देगा। कुछ लोग जो पाकिस्तान नहीं गए थे उनके मकान भी कस्टोडियन के हवाले हो गए थे। इन्हें वापिस

दिलवाने का काम भी शान्ति दल ने किया। घर तो बहुत खाली थे लेकिन सफदर समेत सभी कार्यकर्ता खुद किराए के मकान में ही रहे।[22]

नेताओं से जुड़ाव का हवाला और बातों से भी होता है। सफदर के एक शागिर्द, यशपाल, जब आठवीं में अच्छे नम्बर लाए तो सफदर ने उन्हें आगे पढ़ने की सलाह दी। पता चला उनके वालिद को फालिज था। माँ बर्तन धोने का काम करती थीं। सफदर ने यशपाल को रफी अहमद किदवाई से मिलवाया, जिन्होंने जामिया के रजिस्ट्रार को खत लिखा कि सारा खर्चा किदवाई देंगे और दसवीं में एडमिशन करवा दिया। बाद में किदवाई ने अपने खर्चे पर यशपाल को अलीगढ़ इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए भेजा। बीच में रफी साहब का इन्तेकाल हो गया। सफदर के अलफाज़ में, "वह लड़का ऐसे रो रहा था जैसे उसका बाप मर गया हो।"[23] दूसरे दिन पण्डितजी का खत मिला जिसमें लिखा था, "रफी साहब जितने बच्चों को पढ़ाते थे, अब उनका खर्चा मैं दूँगा।"[24]

सफदर कम्युनिस्ट तर्ज़ के थे। अपने अखबार के पन्नों में लिखते हैं कि आज़ादी के फौरन बाद प्रगतिशील लेखक संघ (ProgressiveWriters' Association) बहुत मशहूर हो गया था, यहाँ तक कि निम्न मध्यम वर्ग के सदस्य भी उससे जुड़ रहे थे। तरक्की पसन्द लोग, चाहे कम्युनिस्ट हों या नहीं, इस आन्दोलन का हिस्सा थे। इप्टा एवं इस लेखक संघ की वजह से यह रिवायत कायम हुई कि हर तकरीब के आखीर में कोई-न-कोई गीत गाया जाना चाहिए। सफदर लिखते हैं कि यह अत्यन्त प्रेरणा दायक प्रथा साबित हुई। इसीलिए इसे स्कूल कि सभाओं में भी अपनाया गया।[25]

सफदर ने बड़े सामाजी-सियासी मुद्दों के लिए काम किया, लेकिन जागीरदार परिवार से ताल्लुक मिज़ाज का हिस्सा था, मोहल्ले के करखंदारों और कसाइयों से दूरी बरकरार रखी, बल्कि औरों को भी दूर रहने की ताकीद की। खुद स्कूल की शिया-सुन्नी सियासत का शिकार हुए और सियासत भी की। घर की रिवायतों को लाँघने की हिम्मत भी आप रखते थे। अपनी बेगम को बुर्का न पहनने की ताकीद की। सैय्यदों में ऐसा करना गैर मोहज्ज़ब माना जाता था, जिस वजह से उनके वालिद और ससुर को यह बात पसन्द नहीं आई।[26]

***

अब दूसरे टीचर नूर साहेब की बात करते हैं। नूर की शुरू की पढ़ाई मदारिस से हुई। अपने आज़मगढ़ के मदरसे जमीअतुल इसलाह की बहुत तारीफ करते हैं। बाद में जामिया मिल्लिया इस्लामिया से उन्होंने उर्दू और अरबी में एम.ए. किया, फिर बी.एड. किया और अब स्कूल में अरबी पढ़ाते हैं। 2006 से 2008 तक की आरज़ी मुलाज़मत के दौरान ग्यारहवीं-बारहवीं को उर्दू पढ़ाते थे, अच्छे उस्ताद

थे, मशहूर थे। इसी बिना पर पक्की नौकरी मिली। अब छटी से आठवीं तक अरबी पढ़ाते हैं। स्कूल में जो तदरीस (pedagogy) का आम तरीका है, वह अपना तो लिया है, लेकिन मुतमईन नहीं है। कहना है, "कोशिश तो करता हूँ लेकिन 40 में से बस दस तक को कुछ सिखा पाता हूँ। अगर यह सिलेबस खतम करने की दौड़ न हो तो शायद कुछ कर पाऊँ।"[27] अब TGT भला PGT के स्तर पर क्यों और कैसे पढ़ाएँ?

साथ ही जिस तदरीस के तरीके से मुतास्सिर हैं, वह मदरसों का खास है, जिसे 'पिछड़ा' मानकर रफा-दफा कर दिया जाता है, जबकि बच्चों के लिखने-पढ़ने का स्तर नए तरीकों की भी दुहाई देता दिखता है। अरबी की शुरू की तालीम के बारे में कहते हैं, "अव्वल में कुछ बुनियादी मोबाहिस को ज़हन नशीं करा दिया जाता था। एक बार जब देखा कि बच्चे ने समझना शुरू कर दिया तो मुश्किल अलफाज़ के माईने ब्लैकबोर्ड पर लिखवा दिए। इसका origin क्या है? इसका माद्दा क्या है? किन-किन फॉर्म्स में यह इस्तेमाल हुआ है, कितने मानी में मुस्तामल है? यह पहले हम लोगों को बता दिया जाता था... शुरू में बाज़ औकात हमें एक वाक्य में आधा घण्टा सर्फ करना होता था। ब्लैकबोर्ड पर खड़ा कर दिया, अब तुम्हें इस इबारत

पे इबारत लगाना है... क्लासमेट कोई भी सवाल कर सकते थे।"[28] स्कूली तंत्र और सिलेबस खत्म करने की दौड़, इस तरीके को इस्तेमाल करने का मौका नहीं देती! तकलीफ की बात है कि नूर का कोई बड़ा नाम नहीं है, बल्कि स्कूल की सियासत में कहीं ओझल-से रहते हैं।

स्कूल के साथ सफर की बात करने पर शेर सुनाया, 'शाहीन का जिगर चाहिए, चीते का तजस्सुस; दुनिया नहीं मर्दानाये जफाकत के लिए तंग!' जी, आप ही की तरह नूर का खूबसूरत अन्दाज़-इ-बयाँ सुनकर हम भी बगलें झाँकते हैं। अगर उनसे ज़बान की तारीफ करो तो कहते हैं, "मुझे तो नहीं लगता कि मेरी ज़बान बहुत अच्छी है। हमारे असातज़ा की बहुत अच्छी थी और हमारे सीनियर्स ने जो हमें मुताल्ले की तरफ रागिब किया, उस मुताल्ले से फायदा हुआ। माईल खैराबादी की किताबें और कुछ रसूल के बारे में सीरत की किताबें और कुछ दीगर किताबें पढ़ता रहा, उनसे फायदा हुआ है।"[29]

स्कूल में बच्चों को तकरीर के मुकाबले की तैयारी करवाना इनका काम है। बच्चे इस मैदान में आगे आ पाए हैं, और उन्होंने इनामात जीते हैं। कई बच्चों की ज़िन्दगी में बड़ा फ़र्क पड़ा क्योंकि उन्हें नए मौके मिले जैसे एक बच्चे को बेहतर स्कूल में दाखिला मिला और आज वह डॉक्टर है। एक बार नूर ने स्कूल के सालाना जलसे में कॉम्पीरिंग की थी, सामअईन का कहना था, "इनका मयार पूरे फंक्शन पर भारी था।"[30]

नूर कई तहज़ीबी रिवायतों से वाकिफ हैं। अपने वालिद से बहुत कुछ सीखा। उनके अलफाज़ में, "मेरे वालिद माशा-अल्लाह आलिमे दीन हैं और कुरानियत का ही नहीं, दीगर मज़ाहिब का अच्छा मुताल्ला कर रखा है। रामायण, वेद इस तरह की किताबें मैंने बचपन से उनको घण्टों-घण्टों बैठकर पढ़ते हुए देखा है। पण्डित हज़रात भी उनके आगे हाथ जोड़ते थे।"[31]

भागलपुर के हिन्दू-मुस्लिम 1989 के फसादात की उन्होंने घिनौनी शक्ल देखी है। बाद में एक महीने बेघर-लुटे-पिटे लोगों के लिए काम भी किया। धर्मनिरपेक्षता पर यकीन है और इसका पैगाम लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं।

***

इन टीचर हज़रात के काम और ज़िन्दगी को हम कैसे समझ सकते हैं? उनकी पेशेवर शनाख्त पर उनके ज़माने के सामाजिक-राजनैतिक सन्दर्भों का क्या असर है? उनके काम और उनकी पहचान पर व्यापक सूरतेहाल का क्या प्रभाव पड़ा है?

आज़ादी के वक्त सफदर 21 बरस के थे, और 1948 में जब स्कूल बना और जब उन्होंने वहाँ काम करना शुरू किया तो 22। 1964 में जब नेहरू का इन्तेकाल हुआ, सफदर 38

साल के रहे होंगे। तो यह कहा जा सकता है कि जिन दहाइयों में नेहरू वज़ीर-ए-आज़म रहे वो दहाइयाँ इस नेहरू-वादी के करियर के बनने-सँवरने का दौर था। नए राष्ट्र का उदय हुआ था। हालाँकि, ऐसा तकसीम के दर्दनाक तज़ुर्बों और अराजकता के साथ-साथ ही हुआ। इसी युग में हिन्दुस्तान ने यकीन और ईमान दिलवाने वाला संविधान बनाया – ऐसा संविधान जो इन्साफ, बराबरी, आज़ादी, भाईचारे, और समान हक रखने वाले नागरिकों पर केन्द्रित था। इस वक्त नेहरू, काँग्रेस का वाम दल (जिसमें से कई छोटे-बड़े समाजवादी समूह निकले), गाँधी के अनुयायी, फिर राजगोपालाचारी जैसे नेता, कम्युनिस्ट एवं अम्बेडकर और उनके साथी – यह सभी हिन्दुस्तान के तसव्वुर से जुड़ी चर्चाओं में लगे हुए थे। इन सब की दिली तमन्ना थी कि एक नया भारत बनाया जाए। नेहरू ने देश के सामने एक राष्ट्रीय दर्शन का प्रस्ताव रखा जिसमें 'राष्ट्रीय एकता', 'संसदीय लोकतंत्र', 'धर्मनिरपेक्षता', 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण', जैसे तत्व महत्वपूर्ण थे।[32] जिन नायकों का अभी ज़िक्र किया है, उनके लिए भारत का नव-निर्माण एक नैतिक प्रोजेक्ट था, जो उन्हें उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्षों से विरासत में मिला था। अँग्रेज़ी राज के खिलाफ हुए जन आन्दोलनों ने आम शहरी को राजनीति के मरकज़ पर खड़ा कर दिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन ने लोगों को यह यकीन दिलवाया कि वे एक आधुनिक राष्ट्र के निर्माण में अहम भूमिका निभा सकते हैं। इन प्रक्रियाओं से राष्ट्र-निर्माण की सार्वजनिक गतिविधियों में लोगों का विश्वास बना और साथ ही सार्वजनिक तर्क और विवेचना में।

इस सूरतेहाल से, बटवारे के बावजूद, सफदर जैसे लोगों को मज़बूती और हिम्मत मिली और उनकी नैतिक प्रतिबद्धता बनी। सफदर की नैतिक कल्पना को हम ऐसी निगाह के ज़रिए समझ सकते हैं। यही नज़र थी जिसकी वजह से सफदर यशपाल की भलाई के लिए रफी अहमद किदवाई से बात कर पाए। और यही वजह थी कि कई फर्दों के चले जाने पर भी वे अपनी सरगर्मियों पर कायम रहे। उन्हें यकीन था कि उनकी प्रस्तावित लोकहित योजनाएँ व्यक्तियों पर मयस्सर न होकर नीति से निकल रही हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह प्रोजेक्ट नागरिक देश निर्माण का भी था, जिसकी मानवतावादी, विश्ववादी नींव थी। ऐसी ही नींव की वजह से सफदर जैसे लोग लम्बे अरसे तक इस प्रोजेक्ट का हिस्सा बने रहे।

दूसरी तरफ यह भी कहा जा सकता है कि सुभद्रा जोशी और सफदर नकवी जैसे लोग उस माहौल का निर्माण कर रहे थे जिसकी हम 'नेहरूवाद' से निशानदेही करते हैं। सफदर के बहुत-से कार्यों में स्थानीय पहलकदमी दिखाई पड़ती है। अक्सर यह कहना मुश्किल हो जाता है कि नेहरू के वक्त के

प्रोग्रामों को अमली जामा पहनाने में उच्च सियासतदानों और अधिकारियों की रहनुमाई थी या फिर सफदर जैसे लोगों की। मिसाल के तौर पर दीवारी अखबार का विचार नेहरू का या किसी अफसर का तो नहीं था, इलाकाई बुद्धिजीवियों-कार्यकर्ताओं का था। 'नेहरूवादी' नवनिर्माण के कामों में राज्य और नागरिक समाज, दोनों के नायकों का अपना-अपना महत्व था।

सफदर के ज़ाती सन्दर्भ पर भी अब नज़र डालते हैं। वे उत्तर प्रदेश के रईस, शिया, पढ़े-लिखे घराने के वंशज थे। वे अल्पसंख्यक समुदाय के अल्पसंख्यक फिरके से जुड़े हुए थे। साम्यवादी और फिर समाजवादी रुझान के इन स्कूल टीचर और प्रिंसिपल की अपनी चाहतें और पूर्वाग्रह थे। ज़रूर इनमें से कुछ उनकी पेशेवर ज़िन्दगी को प्रभावित करते रहे। मार्के की बात यह है कि सफदर ने टीचर को कभी सबाल्टर्न नहीं माना। ऐसा इसलिए क्योंकि वे अपने आपको न तो शिक्षा तंत्र के प्रसंग में, न ही दिल्ली शहर के प्रसंग में, सबाल्टर्न मानते थे। सफदर के हिसाब से उनके युग में राज्य और नागरिक समाज के बीच ऐसे रिश्ते गढ़ने की कोशिश थी कि अध्यापक अपनी अधीनता के खिलाफ जूझ पाता था। इसी के चलते सफदर अपने काम में खुदमुख्तारी बना पाए। और इसी वजह से वे ज़ाती और संस्थात्मक उपलब्धियाँ हासिल कर पाए।

***

दूसरी तरफ नूर के शुरुआती साल ऐसे दौर के हैं जब नेहरू के युग की लौ बुझ चुकी थी। अब तक आते-आते नैतिक सामाजिक प्रतिबद्धता की जगह पहले लोक-प्रियतावाद ने ले ली; और फिर बहुमतवाद, राष्ट्रवाद, संस्कृतिवाद और तंग निगाह से पैदा हुई खुदपरस्ती के नए दावों ने। आज के दौर में नई-उदारवादी नीतियों ने व्यापारी संघों की ताकत को तकरीबन-तकरीबन खत्म कर डाला है, हालाँकि संघों का सिर्फ आर्थिकता की तरफ झुकाव भी इसमें कुसूरवार रहा है। शिक्षा व्यवस्था में सत्ता को केन्द्रित करने और अध्यापकों को हर कदम पर संचालित करने की हाल की कोशिशों ने असातज़ा की अधीनता को और ज़ोरदार तरीके से कायम किया है। क्या ऐसा तंत्र जिसमें टीचर को मंत्रालय से, बोर्ड से, दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी से और प्रिंसिपल के दफ्तर से निर्देश मिलते रहते हैं, हमारे होनहार नूर साहब को अपने शैक्षिक तसव्वुर को और तद्रीसी विचारों को अमली जामा पहनाने के मौके देता है? आपने देखा होगा, सफदर कई तरक्की पसन्द जमातों के सदस्य थेः शक्तिशाली स्कूल टीचर संघ, दिल्ली राज्य का टीचर संघ, बाल बिरादरी, सोशलिस्ट पार्टी और उसकी मोहल्ला कमिटियाँ और पूरे देश में फैला नेहरू-वादी प्रोजेक्ट। दूसरी तरफ नूर और आज के दौर के बारे में क्या कहा जा सकता है? जमात-इ-इस्लामी के उनके काम के अलावा नूर को तंत्र

ने एक तन्हा, कमज़ोर सिपाही ही बना डाला है! सफदर के पास संस्थात्मक कुव्वत थी जबकि मौजूदा संस्थाएँ नूर को कोई समर्थन नहीं देतीं। क्या ऐसे हालात कभी नूर के काम को रौशन करेंगे, क्या उनके नूर को चमक बख्शेंगे?

फ़राह फ़ारूक़ी: इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ इन एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली में पढ़ाती हैं।

अनिल सेठी: पोखरामा फाउण्डेशन, हैदराबाद (तेलंगाना) एवं लखीसराय (बिहार) से सम्बद्ध हैं। पोखरामा फाउण्डेशन सुविधाहीन बच्चों के लिए भारत के दूर-दराज़ के इलाकों में स्कूल चलाने की चेष्टा में है। अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बेंगलुरु में इतिहास व इतिहास शिक्षण के प्रोफेसर रहे हैं। एन.सी.ई.आर.टी, दिल्ली द्वारा प्रकाशित इतिहास की बहुत-सी पाठ्यपुस्तकों को विकसित करने में मदद की है और उनके लिए लिखा भी है।

सभी चित्र: शैलेश गुप्ता: आर्किटेक्ट और चित्रकार जो आज भी बचपन को संजोए रखना चाहते हैं। एमआईटीएस, ग्वालियर से आर्किटेक्चर की पढ़ाई। कहानियाँ सुनने और सुनाने का शौक है। भोपाल में रहते हैं।

सन्दर्भ सूची:

[1] लेख के शोध कार्य में डॉ. तारिक अनवर ने अहम भूमिका निभाई है और इसके लिए हम उनके शुक्रगुज़ार हैं। लेख की सामग्री की विवेचना प्रो. पी.के. बसन्त, डॉ. उमेश झा और डॉ. जावेद हुसैन से हुई है। उनके सुझावों के लिए हम आभारी हैं।

[2] 2011-2014 के बीच अनिल सेठी ने स्कूल के बच्चों और अध्यापकों के साथ तरह-तरह की गुफ्तुगू की है। मिसाल के तौर पर स्कूल में उन्होंने एक History Club बनाया, बच्चों के साथ इलाके का दौरा किया, और अध्यापकों के साथ कार्यशालाएँ कीं।

[3] *तारीख-ओ-तारुफ मदरसा रहमानिया दिल्ली*, (मौनाथ भंजन, मकतबा अल फहीम, 2013)।

[4] 1955 का उपस्तिथि रजिस्टर। एक छात्र, व.च. छाबरा, जो 'शरणार्थी' बनकर 1947 में पश्चिमी पंजाब से दिल्ली पहुँचे। यह 1950 और 1958 के बीच शफीक मेमोरियल स्कूल में पढ़े। उनके साथ साक्षात्कार, 5 जून 2013।

[5] अ) सफदर सन् 1978 से महीने वार एक रिसाले नुमा अखबार शाय करते थे जिसका नाम *शिक्षक साथी* है। हाँलाकि, इसका शीर्षक हमेशा *शिक्षक साथी* रहा पर अखबार अँग्रेज़ी ज़बान में निकलता था। इसलिए हमने इस अखबार का सन्दर्भ अँग्रेज़ी में ही दिया है। 2014 में उनके इन्तकाल के बाद यह काम सफदर के बेटे मंसूर नकवी ने सम्भाल लिया है और यह अखबार अब भी जारी है। इससे हिन्दुस्तान के टीचर आन्दोलन और शिक्षा व्यवस्था के कई आयामों का पता चलता है। रिसाले में गैर मुमालिक की खबरें भी मौजूद हैं। इसी अखबार-रिसाले में उन्होंने तकरीबन दस साल 'Half a Century Struggle' नामक कॉलम लिखा है। इसमें उन्होंने स्कूल से जुड़े अपने तजुर्बों का, टीचर आन्दोलन और शान्ति दल के काम का विवरण किया है। इसके अलावा अपने और ज़ाती तजुर्बों की भी बात की है।
ब) *Shikshak Saathi*, Vol. XXXVII, No. 3 (Delhi: March 2014) पृ. 3.

[6] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XVII, No. 8 (Delhi: August 1994) पृ. 8.

[7] सफदर नकवी का लेख 'सोशल वर्कर' - किताबः गुलाम हैदर, *जिहाद-ए-ज़िन्दगानी*, नई (दिल्ली, जून 1999) पृ. 128-134.

[8] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XIV, No. 2 (Delhi: February 1991) पृ. 8. और सफदर नकवी से साक्षात्कार 30 मई 2013.

[9] सफदर के शागिर्द मोहम्मद रज़ा (सन् 1950 का जन्म) से साक्षात्कार 9 मई 2017.
[10] सफदर के शागिर्दः मोहम्मद नासिर खान (सन् 1960 का जन्म) से साक्षात्कार 13 अगस्त 2017.
[11] सफदर के शागिर्दः सज्जाद (जन्म तिथि - 1.5.1960) से साक्षात्कार 13 अगस्त 2017.
[12] *Shikshak Saathi*, Vol. XXXVII, (Delhi: March 2014) और सफदर से साक्षात्कार 1 जून।
[13] लगातार चार साल इन कहानियों को N.C.E.R.T की जानिब से राष्ट्रीय पुरस्कार मिलाः a) सफदर नकवी, *हज़ारों बरस में* (देहलीः मकतबा नौनिहाल, 1957), b) सफदर नकवी, *दुनिया बदल गई*, (देहलीः मकतबा नौनिहाल, 1958), c) सफदर नकवी, *एक और एक ग्यारह*, (देहलीः मकतबा नौनिहाल, 1959), d) सफदर नकवी, *ओझल परी*, (देहलीः मकतबा नौनिहाल, 1960)।
[14] सफदर के शागिर्द, इरफान जो फतेहपुरी स्कूल, दिल्ली में पढ़ाते हैं, और उनके घर रहे हैं, उनसे निजी बातचीत।
[15] सुभद्रा जोशी, *बच्चों का जादूगर* किताबः गुलाम हैदर, *जिहाद-ए-ज़िन्दगानी*, (नई दिल्ली, जून 1999) पृ. 56-59.
[16] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XIII, No. 12 (Delhi: December 1990) पृ. 8.
[17] निज़ामुद्दीन (TGT विज्ञान, जन्म तिथि 1.10.1942) से साक्षात्कार 1.3.2017.
[18] यह बात मोहल्ले के लोग और साथी टीचर, सभी जानते हैं। सफदर साहब ने इसका ज़िक्र साक्षात्कार में भी किया और अपने कॉलम 'Half a Century Struggle' में भी लिखा है।
[19] सफदर साहब ने 1 जून 2013 के अपने साक्षात्कार में इसका ज़िक्र किया था।
[20] यह एक खुला राज़ है जो स्कूल से जुड़े सफदर के सभी साथी और शागिर्द तक जानते हैं। कुछ साथियों ने, जैसे उजैर, मंज़ूर उस्मानी, राबिया वगेरा ने साक्षात्कार के दौरान इसका ज़िक्र भी किया।
[21] *Delhi School Education Act, 1973.*
[22] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XIII, No. 10 and 11 (Delhi: October and November 1990) पृ. 8. सफदर के बेरी वाला बाग के पड़ोसियों से भी बातचीत से भी यह पता चलता है।
[23] सफदर से साक्षात्कार 30 मई 2013.
[24] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XIII, No. 11 (Delhi: November 1990) पृ. 8.
[25] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XV, No. 3 (Delhi: March 1992) पृ. 8.
[26] 'Half a Century Struggle', *Shikshak Saathi*, Vol. XV, No. 5 (Delhi: May 1992) पृ. 8.
[27] नूरुल इस्लाम (जन्म तिथि 1.1.1980) से साक्षात्कार - 23.3.2017.
[28] नूरुल इस्लाम से साक्षात्कार - 23.3.2017.
[29] नूरुल इस्लाम से साक्षात्कार - 12 अक्टूबर 2013.
[30] फ़राह फ़ारूक़ी, 'एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने X: स्कूल का चलना III: स्कूल का सामान्य कैलेंडर आम या खास', *शिक्षा विमर्श*, (जयपुरः जनवरी-फरवरी 2014)।
[31] नूरुल इस्लाम से साक्षात्कार - 23.3.2017.
[32] Bhikhu Parekh, 'Nehru and the National Philosophy of India', *Economic and Political Weekly*, 5-12 January 1991.